International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

'शिगाफ़' : आतंक और विस्थापन का दस्तावेज

डॉ० सतीश कुमार,
गाँव व डा० मदीना गिन्धराण,
तहसील महम जिला रोहतक
(हरियाणा) – 124111
मो० न० 9813293269

आतंकवाद किसी भी देश की गंभीरतम समस्याओं में से एक है। ऐसे ही कश्मीरी आतंकवाद भी भारत के लिए एक गंभीर समस्या है। कुछ स्वार्थी लोग धर्म की आड़ में अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु आतंकवाद को बढ़ावा दे रहे हैं। कश्मीरी आवाम चौबीस घंटे आतंक के साये में जीते हैं। इसी कारण इस राज्य के चार लाख से भी अधिक लोग भयभीत होकर जीवन इच्छाओं को संजोए पलायन कर चुके हैं। इनमें से अधिकांश संख्या पंडितों की है जो अब शरणार्थियों के रूप में जम्मू या दिल्ली में रह रहे हैं। 'शिगाफ' उपन्यास इन्हीं कश्मीरी पण्डितों के विस्थापन की पीड़ा, आतंकवाद और घाव को नासूर बनाए रखने की सियासी चालाकियों आदि पर केन्द्रित है। कश्मीरी पण्डितों की संख्या 1947 में लगभग तीन लाख थी। लेकिन वर्तमान में पचास हजार पण्डित मुश्किल से घाटी में बचे होंगे। कश्मीर को मुस्लिम बहुल राज्य बनाने के लिए पाकिस्तान जैसे देश मुसलमानों को घाटी में आतंकवादी गतिविधियाँ बनाए रखने पर प्रश्रय देते हैं। लेकिन यह समस्या का हल नहीं है। मुस्लिम–अलगाव के कारण इस समस्या को कभी भी हल नहीं किया जा सकता। रामपुनियानी के अनुसार, ''मुस्लिम अलगाववाद कश्मीरी समस्या में फिर नजर आ रहा है। पाकिस्तान और पाकिस्तान प्रेरित आतंकवाद के प्रति मुसलमानों की निष्ठा निरन्तर बनी हुई है, यही कश्मीर समस्या का मूल कारण है।''[1]

'शिगाफ' में लेखिका ने ब्लॉग शैली का इस्तेमाल करते हुए निहायत शालीनता के साथ आजादी के बाद की कश्मीर समस्या के रेशे–रेशे को देखने की कोशिश की है और इसमें वे काफी हद तक सफल भी रही हैं। कश्मीर समस्या के अंतर्गत विस्थापन के अन्दर तक हिला देने वाले बहुआयामी अहसास की तरफ इशारा करती हुई स्वयं लेखिका लिखती हैं– ''यह अहसास कितने ख्वाब दिखाता है और विराट अनुभवजगत की ओर ले जाता है, लेकिन इस दीवार के पीछे का जो दृश्य है, वह किसने देखा है? गैरभाषियों के बीच, अपनी भाषा का मोह कितना सालता है, यह बांग्ला बोलने को तरसती तसलीमा नसरीन से पूछकर भी देखना होगा कभी। अपने आप को भीतर रखकर लिखना ठीक नहीं होगा। मुझे 'स्वयं' को बाहर एक फासले पर रखकर देखना होगा।''[2]

और इस काम को मनीषा कुलश्रेष्ठ ने इस उपन्यास के माध्यम से बड़ी कुशलता से कर दिखाया है।

कश्मीर की वादी में दिनों दिन बढ़ते तबाही के स्थूल आंकड़े और सुलगती खबरें, रूंधे गलों, बेबस आंसुओं, उजड़ी गोदों, इन्तजार करती वीरान आँखों पर एक बेबस चेहरा चस्पा कर जिस संत्रास, घुटन और आतंक की रचना करते हैं वह किसी से छिपा नहीं है। लेखिका भी इससे व्यथित है और वह इस व्यथा को अपनी रचना में उकेरती है। वह अपने लिखने के प्रयोजन के संदर्भ में एक मार्मिक बात कहती है– ''लिखने के बहाने मैं मन के भीतर की पगडंडियों की यात्रा कर देना चाहती हूँ। सच पूछो तो इस बेमकसद भविष्य के दरिया में तैरते रहने और खुद को डूबने से बचाने के लिए लिख रही हूँ।''[3] अतः यह बात स्पष्ट है कि लिखना लेखिका के लिए एक अलग अर्थ रखता है और यह लिखना अपने खाली समय को भरना नहीं है और न ही किसी तरह का पलायन।

मजे की बात यह है कि इस कथा की ऊपरी संरचना अत्यंत सरल एवं सहज होते हुए भी इसकी अंदरूनी बुनावट बहुत सूक्ष्म और संश्लिष्ट है। वह अपनी कहानी अद्यतन सूचना तकनीक की लोकप्रिय शैली ब्लॉग के माध्यम से आगे बढ़ाती है– ''मेरा नाम अमिता है। मैं भारतीय हूँ। एक विस्थापित कश्मीरी हिन्दू परिवार से हूँ। मुझे स्पेन आए हुए एक साल बीत चुका है। आने के बाद ही से मैं यहाँ स्पेन के उत्तर में पाम्पलोना के निकट बसे एक छोटे शहर सैनसबैस्टियन में रह रही हूँ।''[4] नन्द भारद्वाज लेखिका के शिल्प की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि ''लेखिका इस संक्षिप्त विवरण के माध्यम से अपने केन्द्रीय चरित्र और उसके जीवन–संघर्ष का वह सारा ताना–बाना इतने खूबसूरत अन्दाज में प्रस्तुत कर गई है, जिसे प्रस्तुत करने के लिए हिन्दी कथा–लेखन के महारथियों ने पृष्ठ के पृष्ठ भर दिए हैं और फिर भी उन्हें विश्वास नहीं होता कि कथा की शुरूआत मुकम्मल तरीके से हुई या नहीं।''[5]

अमिता अपने अनुभवों को लेकर इंटरनेट पर ब्लॉग लिखती हैं, जिसके माध्यम से वह अपने अतीत–कश्मीर में अपने पुश्तैनी घर और वहाँ से विस्थापित होने की दुखद घटनाओं से भावनात्मक लगाव अनुभव करती है। बहुत से लोग उस पर प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते हैं। अमिता उसी उदास और उखड़ी मनःस्थिति में कश्मीर पर एक किताब लिखने का इरादा बनाकर अपने पिता और भाई अश्वत्थ के पास दिल्ली लौट आती है। हालांकि अमिता वापिस भारत नहीं लौटना चाहती। इसका कारण बताते हुए वह ब्लॉग में लिखती है कि ''सच पूछो तो मेरा मन ही नहीं है . . . मुझे नहीं लौटना है भारत। एक ऐसा देश, जहाँ धर्म और आस्था के नाम पर किसी को भी बरगलाया जा

सकता है।''[6] लेकिन स्पेन में भी उसे इसी प्रकार के अनुभव मिलते हैं। स्पेन की गलियों की दीवारों पर भी ''मैंने नस्लवादी टिप्पणियों के साथ स्वास्तिक चिह्नों को भी देखा। ये हर जगह नहीं हैं . . . लेकिन मैंने कई जगह इन्हें बने देखा, बिल्डिंगों पर, अक्सर प्रवासियों के विरोध में लिखे नारों के साथ। मुझे नहीं पता था, स्पेन में यह समस्या भी है।''[7] और वह कश्मीर को याद करते हुए ब्लॉग पर लिखती है– ''केवल हम ही नहीं हैं जो पीछे की तरफ लौट रहे हैं, बर्बरयुग में। धर्म, नस्ल, रंग और विचारधारा के नाम पर पूरी दुनिया जल रही है।''[8]

वापसी पर अमिता को कश्मीर की वह जिन्दगी फिर से याद आती है। दिल्ली में उसे घर–परिवार और कश्मीर के बहुत से परिचित लोग मिलते हैं, जिन्हें सरकार से यह शिकायत है कि उसने कश्मीर के हिन्दू परिवारों को उचित सुरक्षा प्रदान नहीं की और उन्हें वहाँ से बेदखल किए जाने पर उनकी समस्याओं को सुलझाने में भी कोई रूचि नहीं ली। श्रीनगर जाने से दो दिन पहले दिल्ली के पालिका बाजार में अमिता की मुलाकात एक मुस्लिम कश्मीरी महिला से होती है, जो यह बताती है कि कश्मीर में हिन्दू की नहीं हजारों गरीब मुस्लिम परिवार भी उन्हीं की तरह दहशतगर्दी का शिकार हुए हैं और किसी तरह जान बचाकर वहाँ से निकल आए हैं। अब कोई भी लौटकर वहाँ नहीं जाना चाहता। वह खुद भी अपने गुजारे के लिए मजबूरीवश एक शादीशुदा मुस्लिम मर्द की दूसरी बीवी बनकर जी रही है, लेकिन कश्मीर लौटकर तो वह शायद इज्जत से जी भी न सके।

बी०बी०सी० पर 'वसीम क़य्यूम खान' का इंटरव्यू देखने के पश्चात् अमिता ब्लॉग में लिखती हैं, ''वह वादी में अमन की बात कर रहा था। कश्मीर में मौजूदा हालात और और फौज को हटाए जाने की बात और विस्थापित हिन्दुओं को फिर ऊधमपुर के करीब बसाने की शुरूआत के प्रति खुशी और सहमति जाहिर करता हुआ, कश्मीर में मुसलमानों के ह्यूमन राइट्स की बात कर रहा था।''[9] तो इस पर प्रतिक्रिया मिलती है कि ''एक मेमने की खाल ओढ़े भेड़िया . . . वह इस्लाम, शान्ति तथा धर्मनिरपेक्षता का पैरोकार बना बैठा था एक अमेरिकी पत्रकार के सामने। मानवाधिकारों की और निर्दोष मुसलमानों की नष्ट हो रही जिन्दगियों की बात कर रहा था। क्या सब भूल गए हैं कि यह वही वसीम था जो पी०ओ०के० से मिलिटेंसी ट्रेनिंग कैम्प से ट्रेनिंग लेकर लौटा था? वसीम एक अलगाववादी . . . जो अहिंसा और शान्ति का पुजारी बनकर 'राजनेता' बनने की चाह में मेमने की खाल ओढ़ आया था।''[10] इस पर इंटरव्यू लेने वाला पत्रकार भी स्वीकार करता है कि कश्मीर में आतंक का बदसूरत चेहरा बहुत डरावना हो चुका है। इस प्रकार लेखिका खबरों के जड़ साँचे

को तोड़कर एक पुकार बन जाती है– क्यों? क्यों? क्यों? आतंकवाद हमारा चयन तो नहीं था। फिर क्यों? ''मजहब को आड़ बनाकर गुनाह को मजबूत जामा पहनाया जा रहा है।

धर्म के द्वारा किसी का भी मानस परिवर्तन करना आसान होता है। इसलिए आतंकवादियों ने कश्मीर में अशांति फैलाने के लिए धर्म का सहारा लिया। अपने कुकृत्यों को जेहाद का नाम दिया। इसलिए धर्म प्राण कश्मीरी लोग उनके प्रभाव में आ गए। लेकिन धीरे–धीरे जब उन्हें यह पता चलने लगा कि जिन्हें वे अपना परम हितैसी व स्वधर्म रक्षक समझते थे, वही उनके शत्रु व धार्मिक मर्यादाओं के हननकर्ता हैं। उनक कुकृत्य व गतिविधियां भारतीय व कश्मीरी मर्यादा के प्रतिकूल हैं। तब कश्मीरी उनके विद्धध होने लगे। कश्मीर का आंकलन करने वाले प्रतिष्ठित पत्रकार राजीव सक्सेना ने कहा, ''सफाकदल (श्रीनगर) के मोहम्मद यासीन के शब्दों में शुरूआती दौर में हमें लगता था कि इस्लाम खतरे में है। घाटी में तब तक यही लहर थी जेहाद करो हम इन्हें (आतंकवादियों) अपने घरों में शरण देते रहे। खुद भूखे रह कर उन्हें खाना दिया, हमारी नजर में जब तक ये मुजाहिद थे, लेकिन जब उन्होंने हमारी ही बहु–बेटियों के साथ बलात्कार करना शुरू किया, जब हमें ही लूटा जाने लगा, तब हमें अपनी गलती का अहसास हुआ। अपनी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए मोहम्मद यासीन कश्मीरी जबान में एक पुरानी कहावत दोहराता है– 'दारा केम्यू फाटनोवनख पननी पईन' इसका अर्थ है, हे दरख्त (चिनार) तुझे किसने तोड़ा–दरख्त कहता है 'मुझे तो आज अपनी ही शषा ने तोड़ डाला।''[11]

दक्षिण कश्मीर के ज़्यादातर गाँवों में मातम ही जीने का अन्दाज़ बन गया है। लोग अब अक्सर त्यौहारों पर आपस में मिलने की जगह धुँध से भरे कब्रगाहों में मिलने लगे हैं। ईद का मज़ा जाता रहा है। बच्चों की हँसी सुनाई ही नहीं देती। शादियों की दावतों में भी लोग, पिछले दो–एक सालों में हुए हादसों में जवानी में ही मौत के आग़ोश में सो गए लड़के–लड़कियों को याद करके आँखें भिगोए रहते हैं।''[12] इससे स्पष्ट हो जाता है कि कश्मीर की वादी को आतंकवाद ने अपनी गिरफ्त में लिया हुआ है। पूरी वादी में साम्प्रदायिकता का जहर फैल चुका है। लेखिका ने कश्मीर के आम लोगों की बातचीत से इस स्थिति को समझाने का प्रयास किया है– ''हमारी रोज़ी–रोटी में फिर बारूद घुल गया।''[13]

विस्थापित हिन्दुओं की तकलीफ़ और गुस्सा अमिता के ब्लॉग पर आई प्रतिक्रियाओं में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। मणि मौसी की पोती की सगाई में इकट्ठे हुए रिश्तेदारों की बातों में खबरों में झूठे एन्काउंटर्स में मारे गए कश्मीरियों के लिए अलगाववादी पार्टी के नेताओं के उपवास पर अरूण भाई साहब की टिप्पणी इसी गुस्से को दिखाती है– ''कश्मीर में एथनिक क्लीजिंग के पैरोकार यही

थे जो आज उपवास रख रहे हैं। हिटलर मानों गांधी का चोला पहनकर आ गया हो . . .। यही गुस्सा अमिता द्वारा मतिभ्रम का शिकार होकर जम्मू में हब्बाकदल ढूंढ़ती दादी के जिक्र में भी दिखाई पड़ता है। लेखिका इस गुस्से को उपन्यास पर हावी नहीं होने देती और ठंडे दिमाग से सभी पक्षों का मत रखती चलती है। अपनी जड़ों से उखड़कर विस्थापन का दंश लिए हाय–हाय करते हुए हिन्दू कश्मीरियों को अपनी खुली उखड़ी जड़ों के साथ, उसी सरजमीं पर धीमी मौत मरता मुसलमान कश्मीरी भी दिखने लगता है।

हिन्दुओं के विस्थापन को देखा जाए तो 'शिगाफ़' की लेखिका ने इसके अंदर तक झांकने हुए एक छोटी सी कविता में इसे पूरा समेट लिया हैः–

''मैं आज निर्वासित हूं – क्योंकि तुमने चुना था निहत्थों को मारना
मैं आज निर्वासित हूं – मैंने चुना सम्मान से जीना, हथियार न उठाना
मैं आज निर्वासित हूं – क्योंकि पूरा संसार चुप रहा, महज़ कुछ लोग ही तो मर रहे थे।
मैं आज निर्वासित हूं – क्योंकि मेरा भारतीय होने में विश्वास था।''[14]

उपन्यास में तीन और कहानियाँ हमारा ध्यान खींचती हैं। ये हैं– नसीम, यास्मीन और जुलेखा की कहानियाँ। दिल्ली की सेल्सगर्ल नसीम की यह बात अंदर तक झकझोर देती है कि ''हाल तो यह है कि कमाऊ आदमी कश्मीर में आजकल सात औरतों पर एक आता है।''[15] और ''औरतें मारे डर के महीनों से सोए बिना रह रही हैं।''[16] इसी प्रकार की बातें तलाकशुदा नसीम को दिल्ली ले आती हैं जहां वह एक अधेड़ उम्र के शादीशुदा आदमी की दूसरी पत्नी बन जाती है। पत्नी, पर हैसियत सेल्सगर्ल से ज्यादा नहीं। शेष दो कहानियाँ अत्यन्त मार्मिक हैं। यास्मीन की व्यथा और उसकी मौत तो अलगाववादी नेता वसीम की सोच को ही बदल देती है। बहुसांस्कृतिक विरासत को प्यार करने वाली, प्रयोगवादी अमनपसंद टीचर रहमान की बेटी यास्मीन पिता की ही अनुकृति है। वसीम से प्रेम करने और उसके बीज को धारण करने के बावजूद वह वसीम की पोलिटिक्स को बिल्कुल नकार देती है।

यास्मीन दरअसल अमिता के व्यक्तित्व का, उसके चरित्र का ही बोया एक पहलू है। जो अमिता की रचनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से स्पष्ट झलकता है–

''छनती है इस कब्र से वह रोशनी
मेरे चेहरे पर पहचान की तरह थिरकती है . . .''[17]

तीसरी कहानी जुलेखा की प्रेमकथा है– यास्मीन के प्रेम में वसीम को बदलने का सामर्थ्य है तो जुलेखा प्रेम में सब कुछ यहां तक कि खुद को भी भुला बैठने का प्रतीक। वह आसिफ के प्रेम

में जेहाद और वफ़ा के लिए सदियों की नींद में गुम हो जाने की ख्वाहिश रखती है और पहली फिदायिन का रूतबा हासिल करती है। अपनों के सुकून के लिए खुद को खत्म कर डालती है क्योंकि माँ को जुलेखा का किसी पाकिस्तानी से निक़ाह मंजूर नहीं था।

ये सारी कहानियाँ अंततः पूरे कश्मीरी अवाम के विस्थापन की पीड़ा की अभिव्यक्ति हैं। इस विस्थापन की मार को सबसे ज्यादा औरतों ने झेला है– शरीर पर–आत्मा पर–हर जगह। अमिता के ब्लॉग का यह हिस्सा बेहद महत्त्वपूर्ण है– ''सोचती हूँ, बिना जलावतन हुए भी यह कैसी बेदर्द जलावतनी थी नसीम की। और जो वहीं रह रही हैं . . . उनकी हर रोज जिस्म से रूह की जलावतनी। कौन ज्यादा दुख में है–हम, जो वहाँ से भगा दी गई . . . मार दी गईं . . . जला दी गईं . . . या वो वहाँ लगातार भाग रही हैं अपने वर्तमान से, रोज मर रही हैं . . .? पता नहीं!''[18]

जलावतनी की शिकार अमिता अपनी त्रासदी को ही गोया जीने का आधार बना लेती है। वह मानों अपने लिए कश्मीर खोजती है–महसूस करती है अपने लिए। त्रासदियों से मुक्त करके देखें तो अमिता ऐसा चरित्र है जैसा होने का सपना कोई भी चेतस् स्त्री देखना चाहेगी। अमिता मानों एक मुक्त आत्मा है . . . स्वच्छंद . . . आपकी खोई हुई आत्माभिव्यक्ति। क्योंकि वह वहां जाती है जहाँ जाने से आप डरेंगे। यह चरित्र उपन्यास की कमजोरी भी है और ताकत भी। कमजोरी इस अर्थ में कि अमिता का चरित्र बहुत वास्तविक बहुत यथार्थ नहीं लगता। और ताकत इसलिए कि आप उसकी वजय से जाने कितनी कहानियों के प्रत्यक्षदर्शी हो जाते हैं– कश्मीर के दुख को अपने लिए जीने को बाध्य। स्पेन में स्पेनिश और कश्मीरियों से कश्मीरी में बात करती अमिता पूरी कहानी को पाठक की रग–रग में भर देती है।

लेखिका ने 'शिगाफ' के माध्यम से कश्मीर को तबाह करने वाले धार्मिक आतंकवाद को भी उघाड़ा है। उपन्यास की यास्मीन अपनी डायरी में लिखती है– ''मैं महसूस कर रही हूं, कश्मीरी लड़कियों ने मेकअप करना छोड़ दिया है। उनके ख़ूबसूरत बाल और माथा सफेद चादरों से ढँकने लगा है। कइयों ने पूरा जिस्म बुरक़ों में लपेट लिया है। काजल लदी आँखें फीकी रहने लगी हैं। चम्पई जिल्दों पर जदीं उभर आई है। चेरी के खिले बाग़ों पर बेमौसम बर्फ की सफेदी घिर गई हो जैसे।''[19] लेखिका बताती है कि इनका इस आतंकवाद से कोई वास्ता नहीं है। इन्होंने ये रास्ता नहीं चुना है बल्कि इन पर तो ये आतंकी माहौल थोपा गया है। ''सियासी दाँव–पेंचों, छद्म युद्ध, आतंकवाद से उनका क्या वास्ता? वे घर चाहती हैं, दो वक्त के गुज़ारे लायक रोजगार और सुरक्षा। मेहनतकश, सुन्दर कश्मीरी औरतें, जो अपने मर्दों के साथ रोजगार में पूरा साथ देनेवाली हुआ करती थीं, आज हताश हैं। अनिश्चितता और अभाव ने उसके चेहरे पर डर की बदसूरत लकीरें

खींचकर रख दी हैं। कभी वे मुक्त होंगी? अब कब डल झील में तैरते शिकारों में उनके गीत गूँजेंगे?''[20] 'शिगाफ़' के संदर्भ में संजना कौल लिखती है, ''आतंकवाद ने कश्मीर की अर्थव्यवस्था जिसकी नींव ही पर्यटन थी को हिला कर रख दिया। हस्तशिल्प को गहरा धक्का लगा। लड़कियों और औरतों का बुरी तरह से दमन किया गया, उनके मौलिक अधिकार छीन लिए गए। मनीषा आतंकवाद में घुट–घुट कर सांस लेते हुए कश्मीरी समाज के इस दर्दनाक पहलू को सामने लायी है।''[21]

कश्मीर की वादी का इतना तनावग्रस्त माहौल होने के बावजूद भी लेखिका को पूर्ण विश्वास है कि एक बार फिर से अमन और चैन कायम होगा। अमिता के माध्यम से लेखिका कहती है कि ''मुझे यकीन है कि हमारा कल्चर, जिन्हें हम कश्मीरियत कहते हैं, वह इतनी कमज़ोर नहीं है कि कट्टरपंथी इसे कुचल दें। तुम लोग लौटोगे तो वक्त के बीतने के साथ इसकी चमक लौट आएगी और यह फिर अमन और भाईचारे से गुलजार होगा।''[22] वजीर भी अमिता से बातचीत के दौरान उसके इस कथन का समर्थन करता है, ''मैं अब भी यकीन रखता हूँ कि सारी तबाही के बावजूद कश्मीर में फिर वही संस्कृति लौटेगी। बस, एक छोटे या बड़े वक़्फे के बाद।''[23]

अस्तु, मनीषा कुलश्रेष्ठ आतंक और विस्थापन के दर्द से जूझ रहे कश्मीरियों के यथार्थ की मार्मिक अभिव्यक्ति करने में सफल रही हैं। यह उपन्यास आवाम की आवाज के साथ–साथ बेबसी की दरार है जिसमें कश्मीर के हर दर्द का हाले बयां दर्ज है।

संदर्भ सूचीः–

1. रामपुनियानी, साम्प्रदायिक राजनीति : तथ्य एवं मिथक, पृ० 98
2. मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ० 12
3. वही, पृ० 13
4. मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ० 13
5. नन्द भारद्वाज, शिगाफ़ : विस्थापन की विडम्बना और दरारें, आलोचना पत्रिका, अप्रैल–जून 2013, पृ० 96
6. मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ० 14
7. वही, पृ० 15
8. वही, पृ० 16
9. मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ० 20
10. वही, पृ० 21
11. उद्धृत, डॉ० यशवन्त विष्ट, साम्प्रदायिकता : एक चुनौती और चेतना, पृ० 135
12. वही, पृ० 250
13. मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ० 167
14. वही, पृ० 29
15. वही, पृ० 76
16. वही, पृ० 78
17. मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ, पृ० 127
18. वही, पृ० 79
19. मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ० 98

20. वही, पृ० 79
21. संजना कौल, शिगाफ़–इन दिनों बदनाम है हर एक दीवाने का नाम, अकार–29 (पत्रिका), दिसम्बर 2010–मार्च 2011, पृ० 155
22. मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ० 57
23. वही, पृ० 138